श्रीराधे

श्रीराधा-उपसुधा-निधि

(हिन्दी भावानुवाद सहित)

महाप्रभु श्रीहित कृष्णचन्द्र प्रणीत

प्रकाशक—
सुन्दरलाल इन्दुरख्या एम. ए., विशारद
नर्मदा प्रिंटिंग वर्क्स,
जबलपुर ।

श्रीराधावल्लभ-
आनन्द-भवन
झगरहटा
बिलासपुर ।

अनुवादक—
बाबा हितदास

वसंत-पंचमी
२६ जनवरी,
सन १९५० ई०

मूल्य—आठ आना

श्रीराधे

श्रीराधा-उपसुधा-निधि

(हिन्दी भावानुवाद सहित)

महाप्रभु श्रीहित कृष्णचन्द्र प्रणीत

प्रकाशक—
सुन्दरलाल इन्दुरख्या एम. ए., विशारद
नर्मदा प्रिंटिंग वर्क्स,
जबलपुर ।

श्रीराधावल्लभ-
आनन्द-भवन
झगरहटा
बिलासपुर ।

अनुवादक—
बाबा हितदास

वसंत-पंचमी
२६ जनवरी,
सन् १९५० ई०

श्रीराधे

समर्पण—

प्यारे हरिवंशचन्द्र !

यही तो इस जीव की महान् अज्ञता है कि इसने अनादि सिद्ध आपकी वस्तु को अपनी समझ रखी है। कितना अन्धेर है ?

क्षमा कीजिये, प्रभो ! मैं अपनी भूल को सुधार रहा हूँ। यह रही आपकी वस्तु; इसे आप सम्हालें।

केवल आपका ही—

हितदास।

भूमिका—

"रसो वै सः" इस वाक्य से भगवती श्रुति ब्रह्म के जिस रसमय स्वरूप का लक्ष्य कराती है, उसका ही रसज्ञ महानुभाव महात्मा-गणों ने श्रीवृन्दावन-विलास के रूप में सविस्तर गान किया है। उसी गान की एक तान यह 'श्रीराधा-उपसुधा-निधि' है। इस तान से अवश्य प्रेमी हृदयों को परम सुख का अनुभव होगा; ऐसा हमारा अपना विश्वास है। इस ग्रन्थ की प्रशंसा में कुछ भी लिखना मानों उसके यथार्थ रूप को लघु करना है। ग्रन्थ पाठकों के हाथ में है। वे स्वयं उसका आस्वादन करें और समझें कि वह क्या है ?

इसके विपरीत अरसिक तो दोष-दृष्टि ही करेंगे। उनसे हमें कुछ कहना ही नहीं है; क्योंकि—

"जिन नहिं समुझ्यौ प्रेम यह, तिनसौं कहा अलाप।
दादुरहूँ जल में बसै, जानै मीन मिलाप" ॥

—निवेदक,

श्यामाशरण शुक्ल,
बिलासपुर।

निवेदन—

'श्रीराधा-उपसुधा-निधि' जैसे रसमय ग्रन्थ का अनुवाद करना मुझ जैसे अरसिक और अल्पज्ञ का दुस्साहस नहीं तो और है ही क्या? मेरे इस दुस्साहस से हो सकता है, प्रेमी संत-महात्माओं को दुःख भी पहुँचे; क्योंकि यह ग्रन्थ रस-मार्ग में परम गोपनीय भी है; किन्तु उनके इस दुःख-निवारण के लिये मेरे पास इसके अतिरिक्त उपाय ही क्या है कि मैं उनके पावन पद-प्रान्त में गिरकर उनकी श्रीचरण-धूलि से अपने आपको अभिसिक्त करूँ?

अनुवाद कैसा हुआ है, इसे तो सुधी-जन ही जानेंगे। मेरी समझ में तो मेरा प्रयास सर्वत्र भूलों और गलतियों से परिपूर्ण है।

इस ग्रन्थ के रचियता हैं, गोस्वामी श्रीहित-कृष्णचन्द्र महाप्रभु। इनके परिचय में इतना ही कथन पर्य्याप्त होगा कि ये स्वनाम-धन्य रसिकाचार्य्य रस-भूषण गोस्वामीपाद श्रीश्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु के आत्मज हैं। और तत्कालीन बृन्दावन के रसिक-समाज के भूषण हैं।

अस्तु; इस ग्रन्थ का रचना-काल अनुमानतः सम्वत् १६१० विक्रम के निकट ही है। इत्यलं।

निवेदक—

अनुवादक।

श्रीराधावल्लभो जयति।
श्रीहरिवंशचन्द्रो जयति॥

श्रीराधा-उपसुधा-निधि स्तव

१

महाभाग्य परिपाक लब्ध राधापदस्पृहा।
काचित्सद्भावप्रकृतिः स्तौति दीना निजेश्वरीम्॥

[श्रीहित राधावल्लभीय सम्प्रदायाचार्य्य गोस्वामिपाद श्रीहित हरिवंशचन्द्रात्मज श्रीकृष्णचन्द्र महाप्रभु कहते हैं—]

जिसे अपने परम सौभाग्य के-फल-स्वरूप श्रीराधा-चरण-कमल-प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न हुई है, ऐसी कोई सद्भाव-वती दीना[1] (दासी) अपनी आराध्या स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीजू से प्रार्थना करती है।

---

१ यहाँ 'काचित्' पद से प्रकटित 'दीना' भावमय स्वयं श्रीग्रन्थकार ही हैं।

२

श्रृङ्गार-रस-माधुर्य्य-सार-सर्वस्व विग्रहे ।
नमो नमो जगद्वन्द्ये वृन्दावनमहेश्वरी ॥

श्रृङ्गार-रस-माधुर्य्य-सार की भी सारमूर्ति हे श्रीराधे ! हे जगद्वन्द्ये ! हे श्रीवृन्दावन की महामहिम स्वामिनि ! मैं आपको बारम्बार नमन करती हूँ ।

३

चारु चम्पक गौराङ्गी कुरङ्गीभङ्ग लोचने ।
कृपया देहि मे दास्यं प्रेमसार-रसोदयम् ॥

हे सुन्दर चम्पकवत् गौर वदने ! हे कुरङ्ग-नयनि ! आप कृपा-पूर्वक मुझे अपना प्रेम-सार-रसोदय-युक्त दास्य (सेवा-भाव) प्रदान कीजिये ।

४

प्रसीद परमानन्द रस-निस्यन्दि सत्पदे ।
सकृत्कृपाकटाक्षेण पश्य मामति कातरम् ॥

अपने सुन्दर चरण-कमलों से परमानन्द-रस का निर्झरण करने वाली स्वामिनि ! आप प्रसन्न होकर मुझ अति कातर (दीन) को अपने कृपा-कटाक्ष से एक बार भी तो देख दीजिये? [बस, इतने से ही मेरा कल्याण हो जावेगा ।]

दो]

५

कोटि-कोटि जगद्भासि नखचन्द्र मणिच्छटे ।
आश्चर्य्य रूप-लावण्ये सकृन्मे देहि दर्शनम् ॥

अपने चरण-नख-चन्द्रमणि की छटा से कोटि-कोटि विश्व-ब्रह्माण्ड को भी आलोकित करने वाली स्वामिनि ! हे आश्चर्य्यमय रूप-लावण्यमयि ! मुझे एक बार भी तो दर्शन दीजिये ?

६

महाप्रेम रसानन्द मद-विह्वलताकृते ।
पुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गी कदा त्वामवलोकये ॥

हे महान्तम् प्रेम रसानन्द-मद के कारण विह्वल आकृति-मयि ! हे सर्वाङ्गपुलकित वपु ! मैं कब आपका दर्शन करूँगी ?

७

हा नाथ प्राण दयित क्वासि क्वासीति विह्वलाम् ।
अङ्कस्थिते प्रिये राधे कदा त्वामवलोकये ॥

हे राधे ! आप अपने प्रियतम की गोद में विराजमान् रहते हुए भी [प्रेम-वैचित्य के कारण] कभी "हा नाथ ! हा प्राण प्यारे !! कहाँ हो ? कहाँ हो ??" इस प्रकार प्रलाप करती हुई विह्वल होंगी । मैं कब ऐसी दशा में आपका दर्शन करूँगी ?

८

सर्वज्ञोऽपि परेशोऽपि मुग्ध मुग्धोति नीचवत् ।
चाटूनि कुरुते यस्याः सैव मे जीवनेश्वरी ॥

जो सर्वज्ञ और परेश (परम-प्रभु) होकर भी मुग्ध-दशा में दीनवत् जिनकी चाटुकारी करते हैं। वही [कृष्ण-प्रिया श्रीराधिका] मेरी एक मात्र गति हैं।

९

यस्याः पदरसानन्दा कोटयंशेनापि नो समाः ।
सर्व प्रेमानन्द-रसाः सैव त्वं स्वामिनी मम ॥

जिनके पद-रस के कोट्यांश आनन्द के तुल्य अन्य सब मिलकर भी नहीं हैं। वह सर्व-प्रेमानन्द-रस-स्वरूपा [श्रीराधा] ही मेरी स्वामिनी हैं।

१०

हा राधे प्राण कोटिभ्योऽप्यति प्रेष्ठ पदाम्बुजे ।
तव सेवां विना नैव क्षणं जीवितुमुत्सहे ॥

हा राधिके ! मुझे आपके श्रीचरण-कमल अपने कोटि-कोटि प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। आपकी चरण-सेवा के बिना मेरा क्षण भर का भी जीवन कठिन है। [मैं उसे कैसे धारण करूँ ?]

११

सर्व लोक महाश्चर्य्यं सुकुमाराङ्गि ते कथम् ।
त्वत्प्रसादाप्त रूपेण विना स्याद्भजनं मया ॥

समस्त लोकों में भी महान्तम् आश्चर्य्यमयी हे सुकुमाराङ्गि ! आपके कृपा-प्रसाद से निज रूप (मेरा अपना दासी-भाव) प्राप्त हुए बिना मैं आपका भजन (दास्य) किस प्रकार करूँ ?

१२

पतित्वा धरणीपृष्ठे गृहीत्वा दशनैस्तृणम् ।
तवैव चरणोदास्यं याचे वृन्दावनेश्वरी ॥

हे श्रीवृन्दावनेश्वरि ! मैं पृथ्वीतल पर लोट कर और अपने दाँतों में तृण ग्रहण करके केवल आपके ही श्रीचरणों के दास्य की याचना करती—भीख माँगती हूँ ।

१३

तवाश्चर्य्य रसामोद-मत्त-मत्ताकृतिं कदा ।
किशोरं श्याममालोके विभ्रमन्तं ततस्ततः ॥

[हे स्वामिनि !] मैं आपके आश्चर्य्यमय रस के मोद से मत्त, महामत्त-आकृति किशोर-श्रीश्यामसुन्दर को विभ्रमित दशा में कब देखूँगी ?

१४

कदा तव पदाम्भोजे निपतन्तं मुहुर्मुहुः ।
कृष्णभृङ्गमहं वीक्षे त्वद्रसासव घूर्णितम् ।।

[हे श्रीराधे !] मैं कब आपके रसासव से घूर्णायमान् श्रीकृष्ण [रसिक] भृङ्ग को आपके चरण-कमलों में बारम्बार निपतित होते हुए देखूँगी ?

१५

तत्र तत्राति मत्तेन किशोरेण धृताञ्चलाम् ।
हुङ्कार गर्व दृग्भङ्गी कदा त्वामवलोकये ।।

[हे प्रिये !] रस-मत्त किशोर श्रीकृष्ण के द्वारा अपना अञ्चल बारम्बार पकड़ा जाने के कारण आप हुङ्कार एवं गर्व-पूर्ण नेत्र-भङ्गिमा करती हुई अति चञ्चल हो जावेंगी। मैं कब इस स्थिति में आपका दर्शन करूँगी ?

१६

भूयो भूयोनुनीताहं परमानन्द मूर्त्तिना ।
कदा प्रसादयिष्यामि त्वां पतित्वा पदाम्बुजे ।।

परमानन्द-मूर्ति श्रीलालजी के द्वारा भेजी गई मैं कब आपके चरण-कमलों में बारम्बार गिरकर आपको प्रसन्न करूँगी ?

१७

कदा त्वां युक्ति चातुर्यैर्लोक धर्म्मादि शङ्किता ।
प्रबोध घटायिष्यामि महारसिक-मौलिना ॥

लोक धर्म्मादि शङ्काओं से शङ्कित-चित्ता आपको, मैं कब अपनी चातुरी-पूर्ण युक्तियों से प्रबोध देकर महा रसिक-मौलि श्रीलालजी के साथ मिला दूँगी ?

१८

कदा कान्तं परिष्वज्य सुप्तायाः कुञ्ज-मन्दिरे ।
तव सम्वाहयिष्यामि सुकुमार पदाम्बुजे ॥

स्वामिनि ! ऐसा कब होगा, जब आप अपने कान्त श्री-लालजी के सङ्ग कुञ्ज-मन्दिर में सुखद तल्प पर शयन कर रही होंगी और मैं आपके सुकुमार चरण-कमलों का सम्बाहन कर रही होऊँगी ?

१९

कदा गृहीत्वा मद हस्तान्नव ताम्बूल वीटिकाम् ।
प्रियास्य-चन्द्रे ददतीं स्वामिनी त्वां विलोकये ॥

स्वामिनि ! कब आप मेरे हाथ से नवीन ताम्बूल-वीटिका (पान की बीड़ी) लेकर अपने प्रियतम के मुख-चन्द्र में देती होंगी और मैं आपकी इस छबि का दर्शन करती होऊँगी ?

२०

कदा रतिकला वेशात्कर्षन्तं ते कुचाञ्चलम् ।
विलोक्य त्वत्प्रियं व्याजात् स्मित्वा यास्याम्यहं बहिः ॥

कभी रतिकला के आवेश में आपके प्रियतम आपका कुचाञ्चल खींचते होंगे, तब मैं इस दृश्य को देख हँसती हुई किसी बहाने से [कुञ्ज-भवन से] बाहर निकल जाऊँगी। ऐसा कब होगा, राधे ?

२१

कदा रसिक-राजेन रम्यमाणां महाद्भुतम् ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा कुञ्ज-रन्ध्रैः भवेयं रस-विह्वला ॥

[हे राधे ! आप ललित लता-भवन में] अपने प्रियतम रसिक-राज के साथ किसी महाद्भुत आनन्द में रमण कर रही होंगी, और मैं उस रस-विलास को कुञ्ज-रन्ध्रों से देख-देखकर रस-विह्वला हो जाऊँगी ! ऐसा कब होगा ?

२२

महा मधुर सत्प्रेम रस-सार महोदये ।
अहो त्वन्मायया मूढास्त्वद्दास्येनोन्मुखाजनः ॥

अहो ! महामधुर उज्वल प्रेम-रस-सारोदय-रूप ! आपकी माया से मोहित मूढ़-जन आपके दास्य-सुख से उन्मुख ही हैं !

२३

अहो त्वच्चरणाम्भोज माधुरीमपि सत्तया ।
सर्वज्ञा अपि न ज्ञात्वा भ्रामयन्त्येव वहिर्वहिः ।।

अहो ! आश्चर्य्य है ! यद्यपि आपकी चरण-कमल-माधुरी त्रिकालावाधित—नित्य उदित रहते हुए भी सर्वज्ञों तक को ज्ञात नहीं हो पाती। इसी से वे बाहर ही बाहर—आपकी चरण-शरण से दूर ही दूर भटक रहे हैं !

२४

त्वत्सेवा रीतिराश्चर्य लोकवेद-विलक्षणा ।
तवैव कृपया लभ्या कदा सद्गुरु सङ्गतः ।।

[हे श्रीबृन्दावनाधीश्वरि !] आपके चरण-कमलों की सेवा-पद्धति आश्चर्य्यमयी एवं लोक-वेद-विलक्षण है। वह केवल आपकी कृपा और सद्गुरु के सङ्ग से ही कभी प्राप्त हो सकती है। अन्य प्रकार से नहीं।

२५

त्वमेव स्वपदाम्भोज रस-वर्त्मनि मे मतिम् ।
नीतवत्य स्वकारुण्यात्पूर्णाशा न करोषि किम् ।।

[स्वामिनि !] केवल आपके ही चरण-कमलों के रस में मेरी मति रमण करती रहती है, तब आपकी करुणा-दृष्टि से अभिसिञ्चित होने की मेरी आशा को आप पूर्ण न करेंगी क्या?

[नौ

२६

कदा कृष्णोऽपि भुक्तेन संभोज्य त्वां प्रियेश्वरीम्।
त्वदुच्छिष्टामृतं भुक्त्वा कृतकृत्यपदं लभे ॥

हे प्रियेश्वरि ! प्रियतम श्रीकृष्ण के द्वारा संभुक्त आपके उच्छिष्टामृत का सम्भोग करके मैं कब कृतकृत्यता-रूप परम पद का लाभ करूँगी ?

२७

कुञ्ज तल्प समासीनां लोल कृष्णाङ्क भूषणाम् ।
कदाहं त्वां करिष्यामि नवसङ्ग-भयत्रपाम् ॥

नव-सङ्ग के भय और लज्जा से पूर्ण आपको निकुञ्ज-तल्प पर प्रियतम श्रीकृष्ण की गोद में भूषण की भाँति मैं कब धारण कराऊँगी ?

२८

निज पादाम्बुज प्रेम रस ज्योतिर्घनाकृतिः ॥
कुरु मां किङ्करी प्राणदयिते वार्षभानवि ॥

हे प्राणप्रिये ! हे श्रीवृषभानु-नन्दिनि ! आप मुझे अपने चरण-कमलों की प्रेम-रस-ज्योति-घनाकृतिमयी किङ्करी बना लीजिये।

२९

प्रेमामृत रसानन्द मकरन्दौघ वर्षिणीम् ।
कदा पादारविन्देहं विन्दे दास्यं तवेश्वरी ॥

हे स्वामिनि ! हे प्रेमामृत रसानन्द का मकरन्द समूह चर्षण करने वाली राधे ! आप कब मुझे अपने पादारविन्दों का का दास्य प्रदान करेंगी ?

३०

भूत्वाति सुकुमाराङ्गी किशोरी गोप-कन्यका ।
कदाहं लालायिष्यामि मृदुलं ते पदाम्बुजम् ॥

[प्रिये !] मैं कब सुकुमाराङ्गी किशोरी गोप-कन्या होकर आपके मृदुल पद-कमलों का लालन—सम्वाहन करूँगी ?

३१

कदा गोविन्द-सन्देश वचनामृत धारया ।
पूरयिष्यामि ते कर्ण-कुहरं हृदयेश्वरी ॥

हे हृदयेश्वरि ! मैं कब गोविन्द के सन्देश वचनामृत को लाकर आपके कर्ण-कुहरों को [उस अमृत से] पूरित करूँगी ?

३२

कदा त्वदास्वाद वाणी शीतलामृत सेचनैः ।
संजीव्य हरिमुत्तममालभेत कण्ठ मालिकाम् ॥

[श्रीश्याम सुन्दर प्रेम-मूर्च्छा से अचेत पड़े होंगे, तब मैं उन पर आपकी] शीतलामृत-वर्षिणि आस्वादनीय वाणी का अभिसिञ्चन करके उन्हें जीवन प्रदान करूँगी। इस पर रीझ कर आप मुझे अपने कण्ठ की माला पहना देंगी। ऐसा कब होगा ?

३३

कदा त्वां त्वत्सुहृद्वेशां कृत्वा संरक्षितां मया ।
प्रागुपेत्य हरिस्मेरः करे धृत्वाभिनेष्यति ॥

प्रथम जब मैं आपको श्रीलालजी के सुहृद (सखा) रूप में सज्जित कर भली प्रकार रक्षा-पूर्वक [सबकी आँखें बचाते हुए] उनके पास पहुँचा दूँगी, तब वे हँसते हुए आपका कर-कमल पकड़ लेंगे और आपको कुञ्ज के अन्तर भाग में ले जावेंगे। ऐसा कब होगा ?

३४

कदा विहृत्य कान्तेन क्वचिदस्मत्परोक्षतः ।
तद्भूषितां समायातां हसन्त्यस्तां विचक्ष्महे ॥

हे राधे ! कभी आप मेरे परोक्ष में अपने प्रियतम से बिहार करके आ रही होंगी। [उस समय] आपको उनके द्वारा आभूषिता देखकर मैं कब हँस पड़ूँगी ?

३५

मिथ्यैव निर्दिशं त्यागस्त्वत्प्राणे व्रज-नागरे ।
प्रेमान्धयाः कदातेहं रसदां जनये रुषम् ॥

स्वामिनि ! मैं आपके प्राण-प्रियतम व्रजनागर श्रीलालजी के प्रति मिथ्या ही कलङ्क-निर्देश करके आप प्रियतम-प्रेमान्धया के हृदय में कब रसमयी रिस (क्रोध) उत्पन्न करूँगी ?

३६

विदग्ध सुन्दरी-बृन्द वर चूडामणे कदा ।
महारसनिधे राधे पदमाराधये तव ॥

चतुर सुन्दरी-बृन्द की श्रेष्ठ चूड़ामणि रूपा श्रीराधे ! स्वामिनि ! हे महारस-निधे ! मैं कब आपके चरणों का आराधन (सेवन) करूँगी ?

३७

हा राधे स्वामिनि कदा किशोरी दिव्य रूपिणी।
प्रेमैक रसमग्नाहं भवेयं तव किङ्करी ॥

हा राधे ! हा स्वामिनि !! मैं कब दिव्य स्वरूपमयी, एक-मात्र प्रेम-रस-मग्न किशोरी होकर आपकी किङ्करी (दासी) हो हो सकूँगी ?

३८

वैष्णवानन्दकोटिर्वा ब्रह्मानन्दादि कोटयः ।
मया ते पन्नखज्योतिः कणान्निर्मञ्च्छनी कृता ॥

राधे ! कोटि-कोटि वैष्णवानन्द और कोटि-कोटि ब्रह्मानन्दादि भी मेरे द्वारा आपकी पदनखच्छटा के एक कण पर ही न्यौछावर कर दिये गये या मैं उन्हें न्यौछावर करती हूँ।

३९

सर्वे धर्माममाधर्माः सर्वसाधुमसाधु मे ।
न यत्र लभ्यते राधे त्वत्पदाम्बुज-माधुरी ॥

हे राधे ! जहाँ कहीं भी हो, यदि आपकी श्रीचरणाम्बुज-माधुरी वहाँ-वहाँ नहीं प्राप्त होती, तो मेरे लिये वे सब धर्म, अधर्म और वे साधु एवं साधुता, असाधु और असाधुता ही हैं, [विशेष क्या ?]

४०

कदा मदान्ध गोविन्दं सुतीक्ष्ण नखरक्षतैः ।
मिथ्या व्यथानुकारैस्त्वां हसिष्यामि मुदान्विता॥

मदान्ध गोविन्द के तीक्ष्ण नखाघातों से विक्षत होने पर आपकी व्यथा का मिथ्या अनुकरण करके हँसती हुई मैं कब मोद-पूर्ण हो जाऊँगी ?

४१

आश्चर्य्य–रसमत्तेन महानागर–मौलिना ।
संभुज्यमानां त्वां वीक्ष्य कदा स्यां पुलकान्विता॥

आश्चर्य्य रस-मत्त महानागर-मौलि श्रीलालजी के द्वारा आपको संभुज्यमान (भोगी गई) देखकर मैं कब पुलकित हो जाऊँगी ?

४२

तत्तत-सुरत वैचित्री चतुरं त्वत्प्रियं कदा ।
तवाङ्के वीक्ष्य खेलन्तं पतेयं मूर्छिता भुवि ॥

और उन-उन सुरत-विचित्रताओं को आपके चतुर प्रियतम में उस समय देखकर जबकि वे आपकी गोद में प्रेम-क्रीड़ा कर रहे होंगे; मैं कब प्रेम से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ूँगी?

४३

किं करोमि क्व गच्छामि कस्य पादे लुठाम्यहम्।
कथं वा लभते राधे तव दास्य रसोत्सवम्॥

हे राधे! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? और किसके चरणों में लुण्ठित होऊँ? तुम्हीं कहो तुम्हारा वह दास्य-रसोत्सव मुझे किस प्रकार प्राप्त होगा?

४४

वैकुण्ठादि पदं काम्यमपि तुच्छं मतं मम।
न यत्र त्वामहं वीक्षे वृन्दारण्य-विलासिनी॥

हे श्रीवृन्दारण्य-विलासिनि! जहाँ-जहाँ पर मैं आपका दर्शन नहीं करती, उन वैकुण्ठादि परम-पदों की कामना भी मेरे मत से अत्यन्त तुच्छ है।

४५

चुम्बमानां श्लिष्यमानां पायमानाधरां मुहुः।
कदा त्वां वीक्ष्य कान्तेन मग्ना स्यां रससागरे॥

हे स्वामिनि! आपको कान्त (श्रीश्याम-सुन्दर) द्वारा चुम्बित आलिङ्गत एवं बारम्बार अधर-रस पान की हुई देखकर मैं कब अपार रस-सागर में मग्न हो जाऊँगी?

४६

गाढ त्वच्चरणाम्भोज बद्ध प्रेमाहमीश्वरी ।
कदा रतिरसंसान्द्रं सर्वमास्वादये तव ॥

हे मेरी स्वामिनि ! मैं आपके चरणाम्भोजों में प्रेम-रज्जु द्वारा गाढ़-रूपेण बँधी हुई हूँ—आबद्ध हूँ । राधे ! मैं कब आपके घनीभूत रति-रसानन्द का सर्व-प्रकार से आस्वादन कर सकूँगी?

४७

श्रीराधे त्वत्पदाम्भोज पराग-परिरञ्जिते ।
वृन्दारण्ये रसमये देहि मे निश्चला रतिम् ॥

हे श्रीराधे ! आपके चरण-कमल-पराग से पूर्णतया अनुरञ्जित रसमय श्रीवृन्दावन के प्रति मुझे अचला प्रीति प्रदान कीजिये ।

४८

यतन्तु कृतिनो यज्ञः तपः स्वाध्याय संयमैः ।
अहं त्वच्चरणाम्भोज रेणोरेवाशया स्थिताः ॥

[स्वामिनि !] भले ही कोई सुकृती यज्ञ, तप, स्वाध्याय (वेद-पाठ) और नियम-संयमों का यजन-साधन करे, किंतु मैं तो केवल आपके श्रीचरण-कमलों की रेणु [श्रीवृन्दावन] में ही भली प्रकार से स्थित हूँ और रहूँगी ।

४९

न त्वं वैकुण्ठ लोकेऽपि न वा ते रसद प्रियः ।
वृन्दावनादृते तस्मात्वदेवाहं गतिश्रितः ॥

[हे श्रीराधे !] न आप वैकुण्ठ लोक में हैं और न आपके रस दाता प्रियतम ही। यदि आप कहीं हैं, तो केवल श्रीबृन्दावन में। अतएव मैंने भी उसी श्रीबृन्दावन का आश्रय ग्रहण किया है।

५०

सर्वानन्दमयाकारेष्वपि वृन्दावने प्रभो।
राधे त्वद्रसमत्तैव मूर्त्तिर्मे रोचते परम्॥

हे राधे ! सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वानन्द-मयाकृति श्रीबृन्दावन में विशेष रूप से आपकी रसमत्त मूर्ति ही मुझे परम प्रिय लगती है, [अत्यन्त रुचिकर है।]

५१

नित्योन्मद रस प्रेम-विलास मधुराकृतिः।
त्वद्दास्येन विना दृश्यं स्वप्रियं मे प्रदर्शय॥

[हे प्रिये !] नित्योन्मद रस एवं प्रेम-विलास के कारण मधुर आकृति को प्राप्त हुए आपके प्रियतम आपकी चरण-सेवा के बिना कभी भी नहीं देखे जा सकते। अब आप कृपा-पूर्वक अपने उन प्रियतम का मुझे दर्शन कराइये।

५२

पितृ-मातृ-सुहृद्बन्धुः मुक्तानामथगोचरम्।
कदा ते प्रियमाश्चर्य्य रसमूर्तिं विलोकये॥

[राधे !] जो पिता, माता, सुहृद, बन्धु एवं भक्तों को भी अगोचर है, आपकी उस परम प्रिय आश्चर्य्यमयी रस-मूर्ति का मैं कब दर्शन कर सकूँगी ?

५३

तत्तल्लोक प्रकटितस्तत्तत्सुखमयाकृतिः ।
सर्वसार रसाङ्गश्री कदाते दृश्यते प्रियः ॥

वह प्रेममय अवलोकन और वह सुखमय आकृति ? अहो ! तथा वह सर्व-सार रूप रसमयी अङ्गश्री ? सब की एक-मात्र निधि आपके प्रियतम को मैं कब देखूँगी ?

५४

वृन्दावन निकुञ्जेषु नित्य-लीला-विनोदिनम् ।
त्वदेक निरतं नित्यं कदा वीक्ष्ये प्रियं तव ॥

स्वामिनि ! श्रीवृन्दावन-निकुञ्ज की नित्य-लीला के आनन्द-विनोद में मग्न एवं आपमें ही नित्य-निरत आपके प्रियतम को मैं कब देखूँगी ?

५५

अनन्तानन्द रूपं ते प्रियं त्वन्मय जीवनम् ।
विकल्पित गतिं मूढैः सदाहं द्रष्टुमुत्सहे ॥

[हे श्रीराधे !] आपका अनन्त आनन्ददायी रूप ही आपके प्रियतम का एक-मात्र जीवन है। मूढ़जन तो इस गति [प्रेम] की कल्पना भी नहीं कर सकते, किंतु मैं सदा उस [रूप-माधुरी] के दर्शन के लिये उत्कण्ठित रही आती हूँ।

५६

यदानन्द रसांशांशमुपजीवन्ति सर्वशः ।
तत्तदाकार लीलास्तं दिदृक्षे त्वत्प्रियं रहः ॥

जिस आनन्द-रस का अंशांश ही सब [प्राणियों] का जीवन है, (अर्थात् जिस रसांश से सब जीव तुष्टि प्राप्त करते हैं,) उसी रस से तदाकार आपके प्रियतम की लीलाओं का मैं कभी एकान्त दर्शन कर सकूँगी ?

५७

यद्यप्यानन्द साम्राज्यं सर्वलीलाकृतिष्वपि ।
तथापि लेशमात्रं ते त्वद्वक्षोरुह भूषणे ॥

[हे स्वामिनि राधे !] यद्यपि श्याम-सुन्दर श्रीकृष्ण समस्त लीलावतारों के शिरोभूषण और आनन्द-साम्राज्य की पराकाष्ठा हैं फिर भी वे सर्वेश्वर आपके हृदय-कमल-भूषण रूप में [आपकी प्रभा के समक्ष] अत्यन्त लघु (लेश मात्र) से प्रतीत होते हैं।

५८

अयोगेऽपि विमूढेऽपि मयि-सर्वाधमेऽपि च ।
अनन्ताश्चर्य्य कारुण्ये नैवोपेक्षितुमर्हसि ॥

हे अनन्ताश्चर्य्य पूर्ण करुणामयि ! यद्यपि मैं सर्वथा अयोग्य, विमूढ़ और सर्वाधम हूँ, तो भी आप मेरी उपेक्षा न कीजियेगा, [यही प्रार्थना है।]

५६

लोकवेद पथं त्यक्त्वा तवैव चरणाम्बुजम् ।
गतोस्मि शरणं राधे न मां त्वां त्यक्तुमुत्सहे ॥

हे राधे ! लौकिक एवं वैदिक मार्गों का परित्याग करके मैं केवल आपके श्रीचरण-कमलों की शरण आई हूँ। स्वामिनि !

आप मेरा परित्याग न कीजियेगा, [यही विनय है।]

६०

अस्तु वामास्तु वा राधे कोटि जन्मान्तरेऽपि मे।
त्वत्पदाम्बुरुहे दास्यं आशात्वावश्यकी मम॥

हे राधे! आपके चरण-सरोरुह-दास्य की आवश्यकीय आशा ही मेरी एक मात्र आशा है, वह चाहे कोटि-कोटि जन्मों में पूरी हो या न भी हो।

६१

सर्वथा सार सारैक नखचन्द्र-सुधालवे।
कथं त्वच्चरणाम्भोज सेवाशां त्युक्तु मुत्सहे॥

मैं आपके चरण-कमलों की सेवाशा का त्याग कैसे कर सकती हूँ? जबकि हे राधे! आपके चरण-नख-चन्द्र की सुधा का लव—लेशमात्र ही सम्पूर्ण सारों का एकमात्र सार है।

६२

लौकिकैर्वैदिकैर्वापि विरुद्ध्यासक्त मानसम्।
त्वत्पदैक रसेमत्तं किं मां त्वां नहि पश्यसि॥

स्वामिनि! क्या आप नहीं देख रही हैं कि मेरा मन समस्त लौकिक एवं वैदिक बन्धनों के विरोध-पूर्वक आपमें आसक्त हुआ केवल आपके पदकमल-रस में ही उन्मत्त हो रहा है?

६३

अनाथं पतितं मूढं त्वदेक-पद जीवनम्।
कृपा स्निग्धावलोकेन पश्य वृन्दावनेश्वरी ॥

हे श्रीवृन्दावनेश्वरि ! इस अनाथ, पतित और मूढ़ की ओर एक बार भी तो अपनी स्नेहमयी कृपावलोकन से देख दीजिये; क्योंकि इसने केवल आपके ही चरणाश्रित जीवन को धारण कर रखा है।

६४

स्वामिन्यति रसाश्चर्य्य मूर्त्तो स्वस्य प्रियस्य च।
रहः शुश्रूषणे योग्यं मम देहि परं वपुः ॥

स्वामिनि ! मुझे वह परम (दिव्य) देह प्रदान कीजिये, जिससे मैं अति रसाश्चर्य्य-मूर्ति आप और आपके प्रियतम श्रीलालजी की एकान्त शुश्रूषा के योग्य हो जाऊँ।

६५

ब्रह्मेश नारदादीनां यत्राशापि सुदुष्करा।
तां त्वत्कैङ्कर्य्य-पदवीं कामयत्तत् धिगस्तु माम्॥

अहा सर्वेश्वरि ! ब्रह्मा, शिव और नारद आदि मुनीश्वरों के लिये जिनकी चरण-सेवा की आशा भी अत्यन्त दुष्कर है; उन्हीं आप [महा महिमामयी] की कैङ्कर्य्य-पदवी की मैं कामना करती हूँ। मुझे धिक्कार है, [क्योंकि ब्रह्मा, शिव नारदादि के समक्ष मेरी क्या गणना है ?]

६६

राधे त्वद्दास्य पदवी सर्व भक्तैश्च दुर्गमा।
तत्रापि वन्निर्लज्जो दुःप्रत्याशां करोम्यहम्॥

राधे! [यह यथार्थ सत्य है कि] आपकी दास्य-पदवी समस्त भक्तों के लिये भी अत्यन्त दुर्गम है, तो भी मैं निर्लज्ज की भाँति उसी दुष्प्राप्य आशा को ही धारण किये हुए हूँ।

६७

अत्यसम्भावितेप्यर्थे दुराशा मे ययार्पिता।
नमस्तस्मै नमस्तस्मै तस्यै तुभ्यं नमो नमः॥

जिन्होंने मेरी इस परम लाभ-मयी दुश्कर आशा को जो अत्यन्त असम्भव थी, आपके श्रीचरणों में अर्पित किया, उन [सद्गुरुवर्य्य श्रीहित हरिवंश चन्द्र महाप्रभु] को नमस्कार है, पुनः पुनः नमस्कार है। और आप मेरी हृदयेश्वरी श्रीराधा के लिये भी बारम्बार नमस्कार, नमस्कार।

६८

सर्व मर्य्यादयातीत सर्वेशाधिक वैभवे।
किमशक्यं तवाप्यस्ति नमस्तुभ्यं नमो नमः॥

[अभी तक पूर्व-श्लोकों में जो कुछ दैन्य-करुणा-पूर्ण अनुनय-विनय, निष्ठा-प्रीति, प्रेम-आग्रह, प्रभाव-माहात्म्य, रस एवं सेवा-याचना के रूप से कहा गया है, उस सब का उपसंहार करते हुए इस श्लोक में श्रीकृष्णाचन्द्र प्रभुपाद कहते हैं—]

हे वृन्दावनेश्वरी श्रीराधे ! आपका वैभव सर्वेश [श्रीकृष्ण] से भी अधिक है—अतुलित है। आप समस्त मर्य्यादाओं से अतीत हैं। [वे लोक-वेद-मर्य्याएँ आपको छू तक नहीं पातीं अर्थात् आप सर्व-तंत्र-स्वतंत्र हैं। मर्य्यादाओं के बन्धन में नहीं हैं।] आपके लिये [हम जैसों को भी अपना श्रीचरण-कैङ्कर्य्य प्रदान करना] क्या अशक्य है ? नहीं।

६९

य एतेनेश्वरीं राधां स्तवेन स्तौति भावतः।
स तस्या उन्मदरसं प्रसादं लभतेऽचिरात् ॥

[अब ग्रंथकार स्तोत्र महात्म्य प्रकट करते हैं—]

जो कोई [श्रद्धालु] इस [श्रीराधा-उप-सुधा-निधि] स्तव के द्वारा सर्वेश्वरी श्रीराधा का प्रेम-भाव-पूर्वक स्तवन करेगा, वह अवश्य एवं शीघ्र ही उनके उन्मद रस [विशुद्ध प्रेम-लक्षणा भक्ति] रूप प्रसाद (कृपा) को प्राप्त कर लेगा।

७०

श्रीकृष्णदासेन कृतोयं वृन्दारण्य-निकुञ्ज।
नागर मिथुनाय ललितादि भाग्यभून्मे नमः ॥

श्रीवृन्दारण्य-निकुञ्ज में स्थित रहकर [मुझ] श्रीकृष्ण-दास ने इस ग्रंथ की रचना की है। [जिनकी कृपा से यह

---

१ ग्रन्थकार का पूर्ण नाम 'गोस्वामी श्रीहित कृष्णचन्द्र' है किन्तु दैन्य वशतः आप 'कृष्णदास' ही लिखते हैं।

रचना की है, उन] ललित नागर युगल-किशोर और उनकी रसाश्रित ललितादि सहचरियों के भाग्य की मैं फिर फिर—बारम्बार बन्दना करता हूँ।

इति श्रीमन्महाप्रभु श्रीहित कृष्णचन्द्र

गोस्वामिपाद विरचितं 'श्रीराधा-

उप सुधानिधि' स्तोत्रं

समाप्तम्

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु श्रीहित कृष्णचन्द्र-

गोस्वामीपाद-विरचित 'श्रीराधा-

उपसुधा-निधि' नामक-

स्तव समाप्त

हुआ।

—

भावी प्रकाशन—

१ श्रीहरिवंश-चरितामृत

लेखक—बाबा हितदास

इस ग्रन्थ में रसिकाचार्य्य-शिरोमणि गोस्वामी श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभुपाद के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है। साथ ही श्रीहित राधा-वल्लभीय सम्प्रदाय का जन्म, प्रसार और उसकी विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय के सिद्धान्त, रसोपासना की पारपाटी और रस का भी इसमें वर्णन है। इसके सिवाय, रसिक-शेखर श्रीराधा-वल्लभलाल के श्रीवृन्दावन-विलास का सैद्धान्तिक एवं शृंगारिक पद्धति से भी निरूपण किया गया है। तत्कालीन महापुरुषों के जीवन और उनकी विशेषताओं का भी इस ग्रन्थ में प्रसङ्गानुसार वर्णन है।

२ श्रीबयालीस लीला

(शब्दार्थ एवं टिप्पणी सहित)
महात्मा श्रीहित ध्रुवदासजी कृत।
टिप्पणीकार—बाबा हितदास

सरल और सार-गर्भित ब्रज-भाषा में विशुद्ध शृङ्गार रस का वर्णन करने में महात्मा श्रीहित ध्रुवदासजी से आगे और कोई हो सकेगा, ऐसा नहीं दीखता। ग्रन्थ साहित्यिक अलङ्कार गुणों से परिपूर्ण है। प्रसाद गुण तो इनकी अपनी वस्तु है। इस ग्रन्थ में प्रेमलता, अनुरागलता, सभा-मंडल,

प्रीति-चौवनी, ब्रज-लीला, प्रेम-सिद्धान्त, वृन्दावन-महिमा, नेहमञ्जरी, रति-मञ्जरी आदि छोटे-छोटे बयालीस ग्रंथों का समावेश है; इसीलिये इसका एक समूचा नाम 'बयालीस लीला' है।

इसके प्रत्येक गम्भीर विषय पर टिप्पणी लिखकर टिप्पणीकार ने इसे समझने में पर्य्याप्त सहायता दी है। साथ ही कठिन शब्दों के शब्दार्थ एवं पद्यों और दोहों के भावार्थ लिखकर इसे हृदय-गम्य बनाने का प्रयत्न किया गया है।

३

श्रीहित चौरासी

एवं

स्फुट वाणी

गोस्वामी श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु कृत

(शब्दार्थ, भावार्थ एवं टिप्पणी सहित)

लेखक—बाबा श्रीवंशीदासजी महाराज

यह ग्रन्थ ब्रज-भाषा पद्य है। महाप्रभु श्रीहित हरिवंशचन्द्र की इस रसमयी पदावली के लिये इतना कथन ही पर्याप्त होगा कि इसे साहित्यिक मनीषी-गण "ब्रज भाषा में गीत-गोविन्द" के नाम से विभूषित करते हैं। इसके शब्दों और भावों को सरल भाषा में लिखकर टिप्पणीकार ने इन पदों के समझने में काफी सुगमता प्राप्त करा दी है। इस ग्रन्थ के पद युगल-सरकार श्रीवृन्दावन-विहारी के विशुद्ध विहार के जागृत मूर्त्त-रूप हैं। श्रीवृन्दावन-रस के उपासक रसिकों के लिये तो ये प्राण-स्वरूप हैं।



हमारी प्रकाशित पुस्तकें—

१—श्रीराधा-सुधा-निधि (हिन्दी अनुवाद सहित) मूल्य ३।)

सजिल्द ३।।)

गोस्वामी श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु-प्रणीत

अनुवादक—बाबा हितदास

२—श्रीराधा-उपसुधा-निधि (हिन्दी अनुवाद सहित) मूल्य ।।)

गोस्वामी श्रीहित कृष्णचन्द्र महाप्रभु कृत,

(आपके हाथ में है ।)

अनुवादक—बाबा हितदास

पुस्तक मिलने का पता—

बाबा श्रीहितदासजी महाराज

श्रीव्यास-भवन (श्रीराधावल्लभजीका

मन्दिर)—बाद-ग्राम ।

पोस्ट-बरारी, जिला-मथुरा

युक्त-प्रान्त ।

(I) हमारी प्रकाशित पुस्तकें—

१. श्रीराधा-सुधा-निधि ... ... मूल्य ३।)
(हिन्दी भावानुवाद सहित) सजिल्द ३॥)
श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु प्रणीत
अनुवादक—बाबा हितदास

२. श्रीराधा-उपसुधा-निधि ... मूल्य ॥)
(हिन्दी भावानुवाद सहित)
श्रीहित कृष्णचन्द्र महाप्रभु कृत
अनुवादक—बाबा हितदास
(आपके हाथ में है)।

(II) शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें—

१. श्रीहरिवंश-चरितामृत
लेखक—बाबा हितदास

२. श्रीबयालीस लीला
(शब्दार्थ एवं टिप्पणी सहित)
महात्मा श्रीध्रुवदासजी कृत
टिप्पणीकार—बाबा हितदास

३. श्रीहित चौरासी एवं स्फुट वाणी
(शब्दार्थ, भावार्थ एवं टिप्पणी सहित)
रसिकाचार्य्य श्रीहित हरिवंशचन्द्र महाप्रभु कृत
टिप्पणीकार—बाबा श्रीवंशीदासजी महाराज

पुस्तकें मिलने का पताः—

बाबा श्रीहितदासजी महाराज
व्यास-भवन-बादग्राम
पो० बरारी, (मथुरा) यू० पी०।